मुनि विद्यानन्द

१९६६
दूसरा संस्करण
बीस हजार

निःशुल्क

प्रकाशक व प्राप्ति-स्थान
शकुन प्रकाशन
३६७५ दरियागंज, दिल्ली ६

अन्तरङ्ग

'A good Mother is better than hundred teachers'

भारतीय नारी की शालीनता उसके अपने वेष और 'पत्नी' 'भगिनी अथवा माता' सम्बोधन में है। माता पिता' शब्द में जो माधुर्य है पालक भाव है वह अन्य शब्दों में दुर्लभ है। पत्नीत्व के अध्यात्मगर्भित सौंदर्य को मिटाकर जो उसे 'भागिनी मात्र देखना चाहते हैं वे ही उसके सबसे महान् शत्रु हैं—वे तो उसके मित्र हैं जो अपेक्षा भेद से उसे फटकार बताते रहे हैं। उन्होंने स्त्री के स्त्रीत्व को मरने मिटने नहीं दिया। 'ज्ञानार्णव' कार आचार्य शुभचन्द्र लिखते हैं कि 'संसार-भ्रमण से विरक्त, शास्त्रों के पारगामी सर्वथा निस्पृह वीतराग भाव धारण करने वाले उपशमवित्त ब्रह्मव्रत का आलम्बन रखने वाला ने स्त्रियों की यदि निन्दा की है तो वह अपेक्षाकृत है। जो स्त्रियां निर्मल यम नियम-स्वाध्याय चारित्रादि से विभूषित हैं, वैराग्य उपशमादि में पवित्र हैं उनको कभी निन्दनीय नहीं बताया क्योंकि निन्दा के विषय दोष हैं गुण नहीं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि वैराग्यधारिणी स्त्रियाँ भी पुरुष विषयक आसक्ति भाव का शमन करने के लिए उनके चर्म रूप का पुद्गल द्रव्य की विकृति परिणति के रूप में देख सकती हैं क्योंकि यह दृष्टिभेद वैराग्य साधन के लिए है अतः इसका मूल अर्थ निन्दात्मक नहीं है, वैराग्य विरति संयम त्याग से अनुस्यूत है। त्याग पथ पर प्रवृत्त हुए पुरुष के लिए स्त्री तथा स्त्री के लिए पुरुष समान रूप से विकाररूप हैं और त्याज्य हैं।

१४ मार्च १९६
आगरा

—विद्यानन्द मुनि

पुरुषों और स्त्रियों का समाज में

स्थान और कर्त्तव्य

समाज की रचना में पुरुष और स्त्री दो समान अविभाज्य अङ्ग हैं। पुरुष के बिना समाज गतिहीन है और स्त्री के बिना स्थितिहीन। पुरुष का कार्य'पौरुष' कहा जा सकता है और उदग्र पौरुष के लिए गतिमय होना आवश्यक है। प्रगति और मार्ग प्रदर्शन के उपायों की सर्जना पुरुष ही करता है। वह शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सबल होता है। अन्य पुरुषार्थों के सम्पादन में अग्रसर रहकर न्याय व्यवस्था, शासन और प्रगति के बहुमुखी बहुदृश्य कार्यों में प्रसक्त रहता है। इस प्रकार वह गति का स्रष्टा है, उत्पादक है और उसकी मंजिल के पड़ाव सूर्य चन्द्र ताराओं की सीमा को छू रहे हैं। स्त्रियां पुरुषों की अर्धांगिनी होकर भी 'स्थिति' की प्रतीक हैं। सनातन मार्ग से आने वाली संस्कृति की रक्षा में स्त्रियों का बहुत भारी सहयोग है। जिस प्रकार घर की देहली पर धरा हुआ दीपक बाहर और भीतर समान उजियाला करता है उसी प्रकार पुरातन मर्यादाओं के क्षेत्र में रहते हुए भी महिलाएं नित्य बदलती परिस्थितियों के साथ समन्वय करने की सहज बुद्धि रखती हैं। रथ का चक्र जब घूमता है तो उसमें दो क्रियाएं एक साथ होती रहती हैं—एक गति और दूसरी आगति। गति क्रिया से चक्र आगे बढ़ता है और आगति क्रिया से वह अपनी कीली (केन्द्र) से सम्बद्ध रहता है। कुम्भकार के चक्र पर यह बात अधिक सुगमता से समझ में आ सकती है। यदि घूमते हुए चक्र का [illegible] करने वाली कीली न हो, उसकी केन्द्र-सत्ता न हो तो [illegible] चक्र अपने स्थान से च्युत होकर कहीं विनीण हो जाएगा,

टूट जायगा। अगुलि में किसी चक्र का लकर घुमाइए और तीव्र गति स घूमत हुए उस चक्र (रिंग) मे स अपनी अगुली निकाल लीजिये। अब दखिये वह चक्र गति से प्रेरित होकर आगे बढ़ेगा और कुछ दूरी पर घूमता हुआ गिर जाएगा। यदि आटा पीसने की चक्की म भी कीली न हो तो वह अपनी धुरी स हट जाएगी और काय नही कर सकेगी। स्त्री का स्थान पुरुष की गति को नियन्त्रित करन म उस कीली क समान है जो अपनी स्थिति से उस गतिमय रखती है और अन्धगति स उत्पन्न होने वाली दुघटनाओ स बचाती है। अत स्थिति और गति के दो सयुक्त स्वभावो का मिथुनीभाव ही 'पुरुष और स्त्री' का दाम्पत्य है। यह ध्यान दन योग्य है कि गति म स्थिति सवथा विपरीत होती ह। 'समान शील-व्यसनपु सख्यम्' जो लोग समान शील हो उनम ही मित्रता स्थिर रहती है इस नीति वाक्य स विपरीत पुरुष और स्त्री सभी स्वभावो म शरीर सस्थानो मे एक दूसरे म नितान्त भिन्न होत हैं और भिन्नता का यह स्थिति ही उनम अभिन्नता उत्पन्न करती है। पुरुष और स्त्री की भिन्न लिंगता ही उनकी जीवन मत्री का प्रमुख कारण ह। यदि स्त्री भी गति की प्रतीक बन जाती है तो दोनो की गति मिल कर स्थिति का सहार करन लगती है। स्थिति का सहार होन का अथ है—परम्परा धम मर्यादा सस्कार, शील और चारित्र्य की समाप्ति। क्योकि स्त्री जब तक स्थिति की अधिष्ठात्री बना रहती है तब तक गतिमय पुरुष पुन -पुन लौट कर वहीं 'आगति' करता है। इसम उसके शील-सस्कार भी सनातन स अभिन्न रहत हैं और उनका कुल सहस्र पीढ़ियों की परम्परा के साथ सम्पृक्त—जुड़ा हुआ रहता है। किन्तु यदि गति म उन्मत्त होकर स्थितिस्थापक कीली का चलता है तो दोनो अपने लक्ष्य स भटककर वह सकना कठिन [illegible] अथवा

'गति' करते हुए पुरुष की चर्या के प्रति आकृष्ट होकर अपनी स्थिति को पगुता मानते हुए गतिमय होने म पुरुष से होड़ लेने लगती है तब भी दोनो की गति स्पर्धा और सघष को जन्म देकर गतिहीन हो जाएगी। क्योकि गति के साथ आगति का नित्य सम्बन्ध है और आगति का नियामक स्थल 'बीली' है। यदि गति का नियामक न मिल तो उसके 'गति'-प्रेरक तत्व ही समाप्त हो जाते हैं और स्थिति की प्रतीक 'स्त्री' के गतिस्पान्तरित होने पर पहले जो पोष्यपोषक भाव उनम था, जो परस्परोपग्रह था, वह समाप्त हो जाएगा और एक दूसरे को आलम्बन देने वाले, एक दूसरे के पूरक कहे जाने वाले तत्व परस्पर विरोधी और स्पर्धा करन वाले हो जाएँगे। इस प्रश्न का दूसरा पहलू और भी भयानक है कि जब स्थिति गति के साथ स्पर्धा करने के आवेश म अपने स्थान से हट जाएगी तो वह स्थान रिक्त हो जाएगा। रिक्त स्थान पर कोई भी अधिकार जमा लेगा तब स्त्री के स्थित्यात्मक स्वरूप के साथ जो शीलाचार था, उसकी समाप्ति होकर दुगुणा दुराचारो की अभिवृद्धि होने लगगी। स्त्री स्वय भी 'स्थिति' पद छोड़ने से प्रगति की बहक म बाहर से रोचिष्णु विषय कषायो के जाल मे फँस जाएगी। पुरुष वग से अधिक चरित्र की रक्षा स्त्री-वग न ही की है और आज तक धर्म के प्रति पुरुष वग की यदि आस्था बनी हुई है तो उसके मूल मे स्त्रियो की ही धार्मिकता निमित्त है। 'स्थिति' की स्थिति से उखड जाने पर तो धार्मिकता और सास्कारिकता की जड़ें हिल जाएँगी। आज तक जो स्त्री समाज घर म रहकर घर को स्वग समान बनाने मे योग देता रहा है, वही आज क्लबो, आफिसो और समानाधिकार के नाम पर यत्र-तत्र सवत्र स्वच्छन्द विचरण करने लगा है। पाश्चात्य देशो के जनजीवन के आधार पर भारतीयो की नकल करने की प्रवृत्ति जोर मार रही है। स्त्रियाँ उपाजन म लगी हैं और पुरुषो को मात कर

देना चाहती हैं। जिस प्रकृति न मातृत्व से, भगिनीत्व से और पुत्रीत्व तथा जायात्व से सम्पन्न करते हुए उनमे प्रेम ममता और दया का अमृत सिंचन किया है, वही इन सद्गुणो का दूर कर 'कामरेड' होने म गुरव मानने लगी हैं। हाट-बाजारो म चाट खाने के लिए समूहबद्ध होकर मँडराती हुई य आधुनिकाएँ घरो को होटल बना रही हैं। पति-पत्नी काम से लौटे तो एक पिक्चर मे चले गये और दूसरा 'क्लब' मे। वहाँ से अर्धरात्रि तक निबटे तो आकर सो रहे और सवेरे से फिर वही 'रोटेशन' चालू। सन्तान न होने के उपाय करतन तो प्रथम तो सन्तति होती ही नहीं और हो भी जाए तो उसके पालन-पोषण का भार आयाओ पर। माता पिता को तो उन्हे सँभालने का अव काश भी नही। तब पीढियाँ उन माताओ और पिताओ के वंशानुगत किस आचार को, मर्यादा को अथवा धर्म को जाने, पहचाने या पालन करे। आधुनिक समाजशास्त्रियो की योजना के अनुसार धर्महीन तथा वर्गहीन सन्तानें इसी पथ पर चलकर आगे बढ रही हैं। स्थिति और गति की यह स्थापना कोई व्यक्तिगत विचार नहीं है अपितु नारी और नर के शरीर संस्थान तथा विवेक से सोच-समझ कर अपनाया हुआ सही मार्ग है।

यदि ससार का दखते हुए स्त्री-पुरुषो की भारतीय जीवन पद्धति पर विचार किया जाए तो आज की अपेक्षा उस पुराने समय म लोग अधिक सुखी थे ऐसा कहना न्याय-संगत होगा। आज लोगो की आय बढी है। सुख-सुविधा उत्पादक भौतिक साधन बढे हैं और जीवन स्तर जिस पश्चिम से उधार लेकर 'लिविंग स्टैंडर्ड' के रूप म हमने अपना लिया है, उसमे भी तरक्की हुई है। आज के लोग इस दशा को प्रगति के नाम से पुकारते हैं और गम्भीर अध्ययन के अभाव म अपने पूर्वजो के ज्ञान-विज्ञान पर ... और संस्कृति पर कीचड

है। आचार-विचार में शुद्धि रखने वाले को 'संकीर्ण' कहकर पुकारते हैं। जातीय उच्च परम्परापालक को 'साम्प्रदायिक' सम्बोधन करते हैं। जूते पहनकर खाने वाले को यदि जूते उतारकर खाने का अनुरोध किया जाये तो कहने लगेंगे कि 'क्या जूता मुंह में जाता है ?' यदि मिट्टी के प्लेटो, गिलासों में खाने की दोषावलि की ओर ध्यान दिलाया जाए तो हँसेंगे। चौके की पवित्रता जीवन में क्या कुछ देती है, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं है। केवल फैशन के नाम पर पढ़े लिखे भी साधारण 'हाइजीन' (स्वास्थ्य) का पाठ भूल गये हैं। अपने वस्त्रों की 'क्रीज' का तो खास ध्यान रखते हैं किन्तु 'चाट' खाते समय खुले पदार्थों पर उड़कर गिरने वाली रास्ते की दूषित मिट्टी, मक्खियाँ और घटिया किस्म के उपादानों, उन सबयुक्त जूठी प्लेटों तथा चाट बेचने वाले के मल से काल नाखूनों की ओर, जिनसे वह कचौड़िया को तोड़ता है किसी का ध्यान नहीं जाता। बहुत समय नहीं हुआ, जब लोग घर से बाहर बाजारों में जिस किसी के द्वारा सिद्ध किया अन्न नहीं खाते थे। यह विचार केवल 'संकीर्णता' को ध्यान में रखकर नहीं किया था किन्तु, स्वास्थ्य की उन्नति और सुरक्षा के लिए था। आज बाबुओं के मुख्य चटोरे हो गये हैं और 'आधुनिक जोड़े' प्राय घर से बाहर भोजन करने में ही आनन्द अनुभव करते हैं। नीतिकारों ने नारी के भारतीय सात्विक रूप का जैसा चित्रण किया है उसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है—

> 'कार्येषु मन्त्री वचनेषु दासी
> भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
> धर्मानुकूला क्षमया धरित्री
> षड्भिर्गुणा स्त्री कुलतारिणी स्यात्॥

स्त्री कैसी होनी चाहिए ? इसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह पति के कार्यों में मन्त्रणा देने वाली हो, वाणी के व्यव-

हार में दासी हो (मृदुभाषिणी, विनययुक्त हो), पति का भोजन कराते समय माता के समान हो, शय्या पर रम्भा (अप्सरा) के समान हो, धर्म का पालन करे, क्षमागुण में पृथ्वी के तुल्य होकर सभी गार्हस्थिक सुखों दुःखों का सहन करे। इस प्रकार छह गुणों से युक्त कुलवधू कुल का तारने में सफल होती है। इन बहुत से गुणों का आधार नारी है। उसे केवल 'भोगिनी' समझने की भूल करके पुरुष वर्ग ने उनकी योग्यताओं का कदर्थन कर दिया है, सीमित कर दिया है।

एक व्यक्ति को अनेक रूपों में नाना प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। अपनी विविध भूमिकाओं के कारण ही वह एक होकर भी अनेकवत् प्रतीत होता है। जिस प्रकार केन्द्र (मध्य) में रखी हुई कोई वस्तु दिशा भेद से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में दिखायी देती है उसी प्रकार ध्रौव्यगुण वस्तु अपने उत्पाद और व्यय से विविध दीखती है। एक पुरुष अथवा स्त्री किसी के लिए पिता माता है तो किसी के लिए भाई-बहिन। ऐसे ही भावात्मक गुण सत्ता से स्त्री पति की पत्नी होते हुए भी माता भगिनी मन्त्री दासी आदि हो सकती है। यद्यपि व्याकरण शास्त्र में पुरुष और स्त्री जातिवाचक अथवा व्यक्तिपरक संज्ञाएँ मानी गई हैं तो भी इनमें मन्त्री दासी, भगिनी और माता इत्यादि का परिकल्पन नितान्त भावात्मक है ऐसा स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं। अतः स्त्री को अथवा पुरुष को उसकी पारिवारिक, सामाजिक और कायिक दृष्टियों से बहुदृश्यीय आकलना उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक है। पुरुष की अपेक्षा नारी को समाज में स्वतः सम्मानित स्थान प्राप्त है। वह मातृ जाति है इसलिए सम्मान की पात्र है। 'जननी' जैसा पवित्र शब्द उसके महत्व का सूचक है। तीर्थंकरों की प्रसविनी होने से स्त्री जाति पुरुषों द्वारा सदा नमस्य है। 'भक्तामर' स्तोत्र में एक हृदयग्राही श्लोक है—

'स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि, सहस्ररश्मि
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥'

"हे भगवन् ! सैकडो स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करती हैं किन्तु जिस माँ ने आपको जन्म दिया, वह तो उन सैकडो में एक ही थी। सभी दिशाओ मे तारे उदय होते हैं किन्तु सहस्र किरणो से दीप्तिमान दिवाकर को तो पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है।' तीर्थंकर भगवान् की माता का स्मरण करते हुए कवि ने मातृ-जाति के महत्त्व को वर्णित किया है।

मातृजाति का यह स्तवन उनके गुणो का स्तवन है। गुणो को भावात्मक माना गया है। द्रव्य मे भावसत्ता की जितनी गहरी प्रतिष्ठा होगी, द्रव्य उतना ही महत्त्वशील होगा। यदि भावात्मक सत्ता की विशिष्टता नही है तो वह द्रव्य उन सस्कारी गुणो से वंचित रह जाता है। एक अशिक्षित में और सुशिक्षित मे शरीर पर्याय से (द्रव्य परिणमन से) क्या अन्तर है ? उनमे द्रव्यदृष्ट्या साम्य होते हुए भी जो भावदृष्टि से पार्थक्य है वही उन्हे उत्तम और अधम बनाता है। भावात्मक सत्ता से ही किसी कुलस्त्री मे और गणिका मे भेद रेखा की सृष्टि हुई है। 'माँ' यह शब्द कान मे आते ही स्तनो मे दूध छलछला उठता है। 'बहिन' सुनते ही आँखो की कोर भाई के स्नेह से गीली हो जाती हैं। यह द्रव्य मे स्थित मोहविकार की ही सत्ता है। सस्कारो से ही हीरा परिधानीय (पहनने योग्य) बनता है और पुरुष अथवा स्त्री भी सस्कारो से ही सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक बनते हैं। इसीलिए तो कहा है कि— नर नर मे है अन्तर, कोई हीरा कोई पत्थर। यही तक नही किसी फक्कड ने तो पुरुष को यदि वह सस्कारहीन है तो पशु पर्याय से भी बता दिया है। वह दोहा इस प्रकार है—

'पशु की होत पनहियां नर का कुछ नहिं हाड ।
यदि नर करणी कर तो नर नारायण होत ।।

यहाँ 'करणी' संस्कारों से प्रेरित आचरण का ही नाम है। पुरुष हो अथवा स्त्री हो, अपने आचरण से ही ऊपर उठ सकते हैं। इसलिए कोई व्यक्ति सातवीं मञ्जिल पर ऊपर है अथवा दूसरा नीचे 'फुटपाथ' पर खड़ा है इससे उसकी ऊँचाई-नीचाई नहीं जानी जा सकती अपितु जिसका मन संस्कारों की छाया में पला है वही उन्नत है। उन्नत का मानदण्ड उसका पता नहीं, उसके संस्कार हैं उसका शील है। उन्नत मानस यस्य भाग्य तस्य समुन्नतम्।

आज के युग में लोग सातवीं मञ्जिल पर अधिक हैं और फुटपाथों पर कम। किन्तु जो संस्कारों की सातवीं मञ्जिल पर हैं वे इने गिने हैं और असंस्कृत लोग अधिक संख्या में उच्च महलों की सातवीं मञ्जिल पर हैं। इसलिए संस्कारविशुद्धि की परिभाषा के अनुसार सातवीं मञ्जिल पर लोग कम हैं और फुटपाथों पर अधिक। इस लोक के व्यवहारों के प्रति राई रत्ती का हिसाब रखने वाले परलोक के लिए कानी कौड़ी नहीं जुटाते यह आश्चर्य का विषय है। लोग, क्या स्त्री क्या पुरुष, सभी भौतिक प्रपञ्चवृद्धि के उपाय जुटाने के लिए दिन रात दौड़ रहे हैं। कोई मोटर पर, कोई वायुयान में तो कोई फुटपाथ पर पैदल। किन्तु दौड़ सभी रहे हैं। किसी के पास बात करने को अवकाश नहीं। शरीर यन्त्र के पुर्जे रात दिन घिस रहे हैं और लोग धीरे धीरे रंगमंच से उतरकर समाप्ति की ओर जा रहे हैं। किन्तु आत्माधिष्ठित पवित्र उद्देश्य के लिए समर्पित शरीर के पुर्जे उन हीनकोटि के उद्यमों में ही अविश्रान्त लग रहकर क्या समाप्त हो रहे हैं, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अच्छे संस्कारों से वंचित होकर उनका जीवन पशु के समान बीत जाता है। भौतिक वृत्ति इतनी बढ़ी है कि नर नारी प्रतिक्षण अपने द्वारा

रिक वेष विन्यास में आभरण सज्जा में, शृङ्गार विलासा म डूबे हैं। अपने निवास को सात्विक बरन के बजाय उसे बीभत्स करते हुए आज की महिलाएँ, बालिकाएँ एक प्रकार का गर्व अनुभव करती हैं। छायावादी कवियों ने जैसे छन्द भंग कर स्वर छन्द के प्रयोग किये वैसे ही वस्त्रो के इतिहास मे आज के लोग स्वच्छन्द प्रयोग कर रहे हैं। वस्त्र पहना भी है और नही भी पहना—ऐसा उनके वस्त्रों को देखकर प्रतीत होता है। पहनने वाला का उद्देश्य भी यही है कि कपड़ा तो शरीर पर बना रहे किन्तु हमारी अन्तश्छन्न असंस्कृत अभिलाषा की पूर्ति भी होती रहे। भारत मे वस्त्रो के पहनने के प्रकार को भी शील का अंग माना है। धर्म के मार्ग पर भी इसका व्यतिक्रम प्रशंसनीय नहीं कहा गया। दिगम्बर जैन श्राविकाएँ भी दो वस्त्र रखने को बाध्य हैं। महाव्रतधारी मुनि लगोटी भी नहीं रख सकते किन्तु माताएँ दो वस्त्र रखते हुए महाव्रतधारिणी हैं। यह व्यवस्था उपगूहनांग की बीभत्सता को छिपाने के लिए है। वासना के पक्ष को निरस्त करने के लिए है। आज की पोशाक जो तंग चुस्त होती हैं अवयवो के उभार को बताती है और समाज मे इससे शील को धक्का लगता है। दृष्टिविकार से आरम्भ होकर मनुष्य मन और शारीरिक विकारों तक ग्रस्त हो जाता है। स्त्रियाँ यदि मन्दिर जा रही होती है तो भी शृंगार करेंगी और मुनिपरमेष्ठियों के दर्शन करने प्रस्थित है तब भी उत्तमोत्तम शृङ्गार करेंगी यह उनकी मानसिक सुरुचि का परिचय नहीं है। शृङ्गार साहित्यशास्त्र मे वर्णित एक रस है जिसकी पूर्ति के लिए स्त्रियो को अपने पतियो के लिए एकान्त मे शृङ्गार रचना करनी चाहिए उसको बाजारो म निकलते समय अनुचित रूप म भडकीला करना अस्वस्थ, अपरिमार्जित और वासनाविद्ध मन की रुग्णता है। अत वेष भूषा ऐसी रखनी चाहिए जिससे वस्त्र पहनने के प्रयोजन की सिद्धि तो हो किन्तु सात्विकता की रक्षा

को आँच न आने पाये। अभी तक पुरुषों का वेष तो इतना विकृत नहीं हुआ है, किन्तु कालेजों में पढ़कर विदेशी स्त्रियों के लिबास को देखकर भारतीय नारियों का वेष सन्देह कोटि को पहुँच गया है। उत्तमकुलीन स्त्रियों को इससे बचना चाहिये। इस समय देश को जो विष नित्य मिल रहा है वह है सिनेमा और रेडियो-गीत। प्राय घरों में रेडियो हैं और उन पर गीत आते रहते हैं। वे कभी श्लील और कभी (अधिकतर) अश्लील होते हैं। ऐसे पद, जिन्हें पिता पुत्री माता पुत्र एक साथ सुनने में सकोच अनुभव करते हैं (धीरे धीरे अभ्यस्त होने से यह सकोच भी दूर होता जा रहा है) घर घर में सुनाई देते हैं। सिनेमा में मनोरञ्जन के नाम पर भद्दे गीत और अस्वस्थ कथानक दिखाये जाते हैं। बाजारों में 'बीड़ी' का विज्ञापन करने वाले लड़कों का 'लड़की' के वेष में सजाकर भद्दे गान बुलवाते हैं और दर्शकों की भीड़ खींचकर उसे 'बीड़ी' के मुफ्त नमूने के साथ चरित्र दोष देते हैं। अच्छे घरों में भी सवेरे-सवेरे रेडियो के शृङ्गार गीत सुनने को मिलते हैं। सिनेमा हाल सदैव 'हाउस फुल' चलते हैं और आज के नवयुवा उसकी टिकटें खरीदने में स्पर्धा करते हैं। भीड़ में चाकू, छुरे चल जाने की घटनाएँ होती रहती हैं और बन्द सिनेमाघरों में निरन्तर बैठने से दूषित वायु का असर शरीर पर होता है। हल्के भद्दे-गीतों से मन में पाप विकार उत्पन्न होते हैं। यह परिस्थिति शोचनीय है और धर्म को, चरित्र को, सादगी को समाप्त करने वाली है। समाज के नर और नारी यदि इससे नहीं बचेंगे तो उनका आहार विहार, धर्म सभी खतरे में समझिए। एक अण्डा खाने के लिए लोग उसे 'जीवरहित' 'शाकाहार में शामिल' इत्यादि दलील देते हैं। किन्तु जो मूल में 'जरायुज' है, जिसकी उत्पत्ति पशुओं और [illegible] समान गर्भ से होती है, जो तिर्यञ्चों [illegible]
वीर्य का [illegible] उसे 'उद्भिज'—श्रेणी के [illegible]

साथ रखना बुद्धि का दिवालियापन नही है क्या ? तक यदि तक तक सीमित रहे तो ठीक, किन्तु जब वह दुराग्रह से कुतर्क बनने लगे तो भयानक है। अण्डा खाने की भ्रष्ट लालसा ने उसे 'वनस्पति' करार दे दिया तो 'क्या ऐसा होना सम्भव है ? वर्तमान समाज इसी प्रकार के निरथक तक उपस्थित करता है। इन तर्कों का पोषण बहुमत करता है। यदि डालडा' वनस्पति को लाखो लोग खाते हैं तो वह 'खाद्य' हो गया। बाजार की मिट्टी की तश्तरियो म बहुत लोग खडे खडे खाने लगे हैं तो नये अनभ्यस्त और सस्कारी भी उधर प्रवृत्त होने मे सकोच का त्याग करने लगे। बहुमत तो लडको का है, यदि वे मिलकर 'एकमत' वाले अपने वृद्ध पिता को घर से निकालने के निर्णय पर एकमत हो जायें तो यह बहुमत से सम्मत होने स निर्दोष हो गया ? लोक मे, सर्वत्र बहुमत के आधार पर निर्णय नही लिये जाते। हास्पिटल के रोगी बहुमत से मिठाई खाने का निर्णय करें और डाक्टर 'एकमत' से उस ठीक नही मानें तो क्या 'बहुमत' होने मात्र से उन्हे मिठाई खाने की अनुमति मिल जानी चाहिए। समाज के बहुत लोग जिन सिद्धान्ता पर चलते हैं उनके निर्माता तो बहुत नही होते। कुछ वीतराग अपने निर्दोष सम्यग्ज्ञान से ससार की भलाई का नि श्रेयस का माग देख पाते है और बताते हैं। एक सूर्य बहुत से लोगो को प्रकाश देता है। अत यदि आज बहुत लोग 'अण्डा खाते हैं, मदिरा पीते है, सिनेमा हाउस फुल चलते हैं बीडी अधिक बिकती है, सिगरेट के विज्ञापन ज्यादा छपते है और मक्खियो के समान लोग बाजारो म जूठी प्लेटें चाटते हैं तो यह केवल बहुमत होने से सबके लिए व्यवहार्य तो नहीं हो जाता। विवेकीजन अपने विवेक को ऐसे ही सन्देह स्थलो के लिए सुरक्षित रखते हैं। उनके काय की कसौटी बहुमत नही, शास्त्र होते हैं। आगमचक्षु साधु' सज्जन व्यक्ति शास्त्र से देखते है बहुमत से नही।

नारी जन्म की सार्थकता

नारी नर की जन्मदायिनी है इसीलिए उसे 'जाया' कहते हैं। वह पति की अर्धाङ्गिनी होने से पत्नी कहलाती है। अर्धाङ्गिनी का अर्थ है पति के सुख दुःख की समभागिनी। कुलस्त्रियाँ व्यसनों में फंसे हुए पति का उत्थान की ओर ले जाती है। वह एक ऐसी मित्र है जिस पर विश्वास रखकर जीवन शान्ति से यापन किया जा सकता है। नारी का इतिहास तप, त्याग और सेवा का पाठ सिखाता है। विवाह होने पर उसे एक साथ पिता का घर छोड़ना होता है और पति गृह में नये जीवन का प्रारम्भ करना होता है। पिता-माता के पास सीखे हुए सत संस्कारों से वह शीघ्र ही श्वसुरकुल में प्रिय हो जाती है।

सती स्त्रियों ने नारी को धन्य किया है। सती सीता, अञ्जना, चन्दनबाला इत्यादि से स्त्री पर्याय को गौरव प्रतिष्ठा और सम्मान मिला है। सती स्त्रियाँ धर्मपथ से विचलित नहीं होती। रावण के पास रहकर भी सीता ने पतिव्रत धर्म नहीं छोड़ा। जब श्रीरामचन्द्र ने लोकापवाद से सीता का परित्याग कर दिया और सेनापति कृतान्तवक्त्र उन्हें वन में छोड़कर आने लगा तब सीता ने उसे जो सन्देश दिया वह चिरस्मरणीय है। उसने कहा—श्रीराम से कहना कि लोकापवाद भय से जैसे मुझे छोड़ दिया वैसे कभी धर्म का परित्याग न करें। भारतीय सती ही ऐसा कह सकती है।

आज स्त्रियाँ आधुनिक होने में होड़ ले रही हैं। उन्हें सीता के चरित्र से अधिक चित्रपट की तारिकाओं—नटियों का रहन सहन, वेषभूषा, आचरण अधिक प्रलोभनीय लगने लगा है। वे मां कहलाने के स्थान पर 'मम्मी' कहलाना पसन्द करती हैं।

पत्नी के स्थान पर 'वाइफ' होकर अपने को ऊंचा मानती हैं। अपने ही पुत्रों को अपना स्तन्य नहीं पिलाती मानो, उन्हें मातृ वात्सल्य की निर्झरिणी से वंचित करती है। भारतमाता के नाम से जो अच्छा भी है उसमें उन्हें दोष दिखायी देते हैं और यूरोप से आया हुआ भौतिकवाद का जहर उन्हें पसन्द है।

यूरोप की स्त्रियाँ तलाक लेकर भी दुःखिनी हैं और भारतीय स्त्रियाँ उसी दुःखमार्ग पर चलने के लिए कानून की माँग करने लगी हैं। अविच्छेद्य विवाह सम्बन्ध में विश्वास-निर्माण होता है और इसीलिए भारतीय भाषा में पत्नी को 'जीवनसंगिनी' कहते हैं। जहाँ तलाक होने लगेंगे वहाँ जीवन संगिनी कहाँ रह जायेगी? इसलिए भारतीय मर्यादित जीवन सुख-शान्ति पूर्ण है।

भारतीय धर्मशास्त्र में विधवा विवाह नहीं माना गया। विधवा को धार्मिक जीवन बिताना चाहिये। उसे ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आत्म कल्याण में प्रवृत्त होना हितकर है। आज सरकार धर्म निरपेक्ष है और भौतिक जीवन व्यापक हो रहा है। अनियन्त्रित काम भोगों से जनसंख्या बढ़ रही है और परिवार नियोजन पर सरकार बल दे रही है। परन्तु हमारे धर्मशास्त्रों ने पहले से ही परिवार नियोजन को प्रचलित कर रखा है। संन्यास लेना, वानप्रस्थ का पालन करना, ब्रह्मचर्य लेना पुनर्विवाह न करना इत्यादि कितने प्रकार के परिवार नियोजन थे। यहाँ उन्हें धर्म निरपेक्षता के नाम से उच्छिन्न कर अब भौतिक सूत्रों से परिवार नियोजन का पाठ पढ़ा रहे हैं। यह बुद्धि का दिवालियापन नहीं तो क्या है?

नारी संयम का पाठ सिखाने वाली संस्था है। उसे आधुनिक शिक्षा ने असंयम की ओर ढकेलना आरम्भ कर दिया है। यह राष्ट्र के लिए अमङ्गल जनक है। पुरुष का संयम नारी के संस्कारों की छाया में पलता है। नारी यदि मर्यादा-

दकर दूसरा विवाह किया था। यह पता घर जाने पर उसे लगा। जहाँ विवाह संस्था की यह दुदशा हो, वहाँ जीवन कितना अविश्वासपूर्ण तथा बच्चों का भविष्य क्या होगा तथा वे बालक जो परस्पर किन्ही दूसरे दूसरे माता पिताओं से पैदा हुए होंगे, उनको कितना वात्सल्य मिला होगा ? और दुःख है कि भारत उधर ही जा रहा है।

नया हिन्दुस्तान प्रेस चान्दनी चौक दिल्ली ६

शील धर्म का माहात्म्य

कर्मों न हा छली हू मैं, पापी के वश आन पड़ी ।
शील धर्म को तजू न अपने कभी नहीं कभी नहीं कभी नहीं ।

प्रेम भरी गुलनारी में नहीं आऊंगी इन रागतारों में ।
मैं सुखी थी राम कुटी वन में यहां चैन नहीं गुलनारों में ।

तू लोभ मुझे दिखलाता है तेरा लोभ मुझे दरकार नहीं।
मैं पतिव्रता सन्नारी हूं, मुझे अन्य पुरुष स्वीकार नहीं ॥

तेरे सहस अठारह रानी हैं निर्लज्जी तू कहलाता है ।
पर त्रिया की वाञ्छा करता है तू जरा नहीं शरमाता है ॥

मेरे पति पता जो पा लेंगे तेरी हस्ती आन मिटा देंगे ।
क्या सोन की लङ्का का मान करे यो ईंट से ईंट मिला देंगे ॥

मेरे देवर लछमण शेर बबर, तुझे यमपुर को पहुंचा देंगे।
तू वीरता उनकी क्या जाने, तेरा नाम निशान मिटा देंगे ॥

तू आगे हाथ बढ़ाना मत इस तन को हाथ लगाना मत ।
मेरे तन से आहें निकलेंगी, ओ पापी तू जल जाना मत॥

मुझे राम पै जल्दी पहुंचा दे यदि खैर तू अपनी चाहता है ।
मुझे वन से चुरा कर लाया है तू कैसा वीर कहलाता है ॥

शिवराम कहे सिया रावण से ओ मूरख तू पछतायेगा ।
ओ मानी मान कहा तू मेरा, तुझे मान नरक ले जायेगा ॥

— • —

राष्ट्रीय पर्व

दीपावली

विद्यानन्द मुनि

१९६६
दूसरा संस्करण ५ ००
निःशुल्क

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान
शकुन प्रकाशन
३६२५ नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज, दिल्ली ६

वीरप्रभु पातु नः

राष्ट्रीय पर्व · दीपावली

आकाश में झिलमिल २ जगते तारे और धरती पर जगमग २ जगते दीप, मानो पृथ्वी और आकाश अपना रूप सँवार रहे हों अथवा दोनों किसी विशेष आनन्द में नहा रहे हों। घरों, गलियों, बाजारों और हाट-दूकानों पर दीपक-मालाएँ स्नेह को पीकर नाच रही हैं। सजे सँवरे हुए बालक, युवा और वृद्ध नगर शोभा देखने निकल रहे हैं। स्वच्छ प्रकाशों में भव्य घरों और मन्दिरों की शोभा किसी विशेष बात की सूचना दे रही है। आज स्वर्ग के देव पृथ्वी पर उतरे हैं। वे भगवान् महावीर की निर्वाणपूजा के लिए एकत्र हो रहे हैं क्योंकि यह पर्व भगवान् वर्द्धमान की निर्वाणपूजा का दिन है। निर्वाण का अर्थ है मुक्ति। जीवन की सबसे उत्कृष्ट उपलब्धि। संसार की चौरासी लाख योनियों के भवभ्रमण से छुटकारा। यह प्राप्तव्य जिसके लिए त्याग तप तपते हैं, महाव्रत लेते हैं और वीतराग होकर अनेक परिषह सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर स्थिर गति से बढ़ते हैं। यही निर्वाण की प्राप्ति आज भगवान् को हुई है। जिन भक्तों ने घरों में समग्र २४ दीप जलाकर तीर्थंकरों की आत्मज्योति का जो दर्शन किया है। ज्योति को स्नेह (तेल) देकर उजागर करनेवालों के मन भगवान् की प्रशान्त ध्यानमयी मुद्रा को अपने में प्रतिष्ठित कर रहे हैं। आज भगवान् को 'निर्वाण मोदक' चढ़ाने की उमंग में सबके मन मुदित हो उठे हैं। अहो! यह कितने

आनन्द की वेला है। जिनका जीवन ज्ञान, चरित्र और प्रकाश देता रहा उनकी निर्वाणविभूति से श्रद्धा ने मानो शृङ्गार किया है। लोगों के हृदय गन्धर विद्यालयों के स्नातक होकर निकल रहे है। उमग ने आकार पर उदयसुन्दरी की आभा लगा दी है।

अद्य दीपोत्सवदिने वर्धमानस्वामी मोक्ष गत (आलाप पद्धति पृष्ठ १६६) आज वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गये, इस स्मृति से भव्य भावुकों का मन अतीत के स्वर्णकाल से क्षण भर के लिए तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह डूब जाता है भावना के समुद्र मे और सोचने लगता है—अढाई हजार वर्ष पूर्व हमारे आराध्य के चरणकमल इसी पृथ्वी पर सचार करते थे, उनकी समवसरण सभा मे बैठे गणधर गौतम दिव्य ध्वनि को अक्षरात्मकता देकर लोक के लिए बोधगम्य कर रहे थे। आज उसी तीर्थंकर परमदेव की पवित्र निर्वाणपूजा तिथि है। पूर्वजों ने अपनी जीवन परम्परा मे कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपक की लौ मे उस दिव्य निर्वाण-ज्योति को जीवित रखा है। वर्ष, युग और शताब्दियां के बाद सहस्राब्दियाँ बीती किन्तु निर्वाणज्योति आज भी उसी जगमग द्युति के साथ जल रही है, दीपकों मे और श्रद्धासिक्त हृदयों में। समय की आँधियाँ इसे बुझा नही सकी और विस्मृति के 'मार' इसकी वर्तिका को मन्द नही कर सके। अमन्द आनन्दमयी यह प्रभा प्रभावना के सहस्र स्नेहघट पीकर साधकों के हृदय मे अमर अक्षय दीप बन गई है। त्रिरत्न के शरावों मे, दस लक्षण की वर्तियों मे, वह्नि की अरम्य शिखा मे कोटि कोटि हृदयों के 'दीवट' पर यह निर्वाणज्योति सस्नेह मुसकरा रही है। श्रद्धा के आँचल आँधियों को परास्त कर रहे हैं, अडिग विश्वास के छोर इनकी लौ मे लीन हो रहे हैं।

दीपों सब पर लोग अपने घरों को बुहारते हैं, सफेदी पोतकर उन्हें उज्ज्वल बनाते हैं तथा दीपक जलाते हैं। इसका आत्मिक आशय यह है कि भगवान के इस निर्वाण-स्मृति दिवस में लोगों को अपना शरीर रूपी घर बुहारना चाहिए। इसमें राग, द्वेष, काम, क्रोधादि जो कूड़ा-कचरा है, उसे ज्ञान की बुहारी से निकाल बाहर करना चाहिए। आत्मशुद्धि की सफेदी पोतनी चाहिए और स्वच्छ हुए इस घर में ज्ञानोपयोग का दीपक जलाना चाहिए। मुंडेरों पर धरे हुए दीपक आत्मा के पीठ पर धरे जाने आवश्यक हैं। नहीं तो धुआँ उगलने वाले ये दीप जब भोर में तारों के समान निष्कांति हो जाएँगे तब रात भर जलने का परिणाम मूल्य किस रूप में अंकित कराओगे। 'दीपक से दीपक जलता है' इसे आत्म दीपक आलोकित कर सिद्ध करो। श्वासों की बाती में प्राणों के दीवट पर आत्म भुवन में 'सहस्र वाट' का ऐसा दीपक जलाओ जो सदा के लिए अंधियारी रातों का आगमन निरस्त कर दे। आज के धनोपजीवी लोग इस 'धन्य' दिवस को 'धन' मान बैठे हैं। जो निर्वाण से धन्य है, उसे अकिंचन धन से धन्य मान रहे हैं। मोक्ष लक्ष्मी के पूजन का दिन भौतिक लक्ष्मी की आराधना में लगा हुआ है क्योंकि आज जीवन के मानदण्ड बदल गये हैं। मनुष्य की सात्विक-वृत्तियाँ भौतिक ऐश्वर्य की चकाचौंध में सम्यक्त्व को देख नहीं पा रही हैं। सहस्र दीपक जलाकर भी मानव आत्मप्रकोष्ठ में एक दीपक भी जलाना नहीं जानता। बाहर की कांति देखकर प्रसन्न होता है किन्तु भीतर प्रकाश करना भूल गया है। तप, त्याग और संयम के स्थान पर विलासी, परिग्रही और स्वच्छन्द हो गया है। इस लिए बाहर तो दीपकों का उजाला है परन्तु भीतर आत्मा में 'दीप तले अंधेरा' है यदि दीपावली के दिन अभ्यन्तर दीपक की

ग्रार मानव का ध्यान रहे तो बाहर भीतर प्रकाश ग्रालोकित हो उठे।

दीपक का काम प्रकाश विकीर्ण करना है। प्रकाश का पर्याय है ग्रालोक। लोकन (देखने) की शक्ति प्रकाश से ही उपलब्ध हाती है। प्रत्येक मानव कुछ देखना चाहता है। मोक्ष माग मे प्रवृत्ति सम्भव करने के लिए पृथक सम्यक्त्व विशिष्ट 'दर्शन' का स्थान है। नेत्रों की 'लोचन' सज्ञा है जिसका ग्रथ भी 'देखना' ही है। यह ग्रवलोकन लोचन ग्रौर वस्तुदीपन प्रकाश के सह योग से ही साध्य है। ग्रधकार घनीभूत होने पर, दीपक बुझ जाने पर ग्रौर ग्राख मूद लेने ग्रथवा नष्ट हो जाने पर जागतिक मौर प्रकाश प्राप्त करना ग्रशक्य हो जाता है। इसलिए ससार ग्रधकार निवारण के लिए दीपक जलाता है। यह दीपक बाहर के तिमिर को हटाता है ग्रौर प्रकाश देता है। इस दीपक को देखकर प्रसन्नता इसलिए होती है कि ग्रात्मा प्रकाशमय ग्रौर ज्ञानमय है। ग्रात्मधर्म का सधर्मी होने से दीपक ग्रानन्द-दीपक है। कवि बिहारी ने कहा है—'ज्यो बडरी ग्रँखियाँ निरखि ग्राखिन का सुख होत' जसे बडी-बडी ग्राँखो को देखकर ग्राँखो का सुख मिलता है इसी प्रकार ग्रपने सगोत्र, सधर्मी ग्रौर समशील को देखकर चित्त प्रमुदित हो जाता है। इसका ग्राशय यह है कि भीतर का प्रकाश ही हम बाहर प्रकाश करने की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रकाश से ग्राह्लादित हाने का यही ग्रथ है।

यह दीपक मिट्टी के पकाये हुए शराव का नाम है। इसमे गुण ग्रौर स्नेह (रूई ग्रौर तैल) पूरित किये गये है। इस प्रकार मिट्टी के ग्रधरो पर चैतन्य का सम्पर्क हुग्रा है ग्रौर उस चेतन का स्पर्श पाकर जड मिट्टी नाचने लगी है। क्या इसी प्रकार हमारा

यात्मजुष्ट शरीर नहीं है ? पृथिव्यादि परमाणु पुजा को गर्भ के 'यावे' में परिपक्व किया गया है और रस रक्त-शुक्र इत्यादि स्नेह पदार्थ सींचकर इसका स्वरूप-देश निर्माण किया गया है, इस घनीभूत किया गया है। आत्मा की 'लौ' इसके ओठों से लगी हुई है। इस प्रकार यह शरीर दीपक जल रहा है, प्रकाश बांटने के लिए और स्वयं प्रकाशित होने के लिए। कहा भी है—

'जेहि विधि माटी घडे कुमारा
तेहि विधि रचित सकल संसारा'

यह कर्मरूपी कुम्भकार शरीररूपिणी मिट्टी को निरन्तर (कर्मानुसार) घड़ रहा है और इसलिए विविध कर्मप्रचोदना से चौरासी लाख योनियों का यह विराट् विकट भवारण्य सकुल हो रहा है। इस शरीर में जो आत्मरूप चेतन विराजमान है वही वास्तविक दीपक है जो मार्ग के माग को दिखा सकता है। कारा मिट्टी से बना हुआ दीपक तो बाहर २ प्रकाश फैला सकता है। अतः शाश्वत प्रकाश प्राप्त करने के लिए आत्मदीपक की लौ को ऊँचा उठाना चाहिए। दीपावली की रात्रि में जैसे लाख कोटि दीपकों की पंक्ति जगमगाने लगती है उसी प्रकार कोटि-कोटि मनुष्यों के हृदय में आत्मज्योति जगमगा रही है, [illegible] अबुभ। किन्तु जैसे कोई अजान व्यक्ति निकट रहते हुए [illegible] चय के अभाव में उस वस्तु से अनभिज्ञ ही रह [illegible] प्रकार अपने भीतर आत्मदीपक विद्यमान होते हुए [illegible] की प्रतीति नहीं होती। वह आनात्मन अपने [illegible] हुए भी उसको पहचान नहीं पाता। कथा है [illegible] जात पति को उसकी पत्नी ने चार मधुर [illegible] पाथेय के लिए दिये और उनके भीतर [illegible] दिये। किन्तु उसे पता नहीं था और मार्ग में [illegible]

व्यक्ति को देखकर उस दयाद्रहृदय ने वे मोदक उसे दे दिये। इस प्रकार उसकी अनभिज्ञता से वे लाल' भी लड्डुओं के साथ चले गये। इस शरीर रूपी मोदक में 'लाल' रूप आत्ममणि छिपी हुई है। उसका ज्ञान न रखने से बालभिक्षु को लोग शरीरसहित मणियां दे रहे हैं। परन्तु शरीर के साथ, जो वास्तव में काल का भोग है इस भीतर छिपी हुई रत्नराशि भी दे बठते हैं, यह ज्ञान ही बहुतों को नहीं है। किसी कवि ने ठीक इसी अवसर के लिए लिखा है—

'सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नहीं।
याते भयो कगाल, गाठ खोल देखी नहीं।'

गाँठ खोलकर उस मणि को, जो रात दिन अपने पल्ले से बँधी हुई है, अपने ही अचल में है, देखने वाले विरले ही होते हैं। शेष तो अपनी सम्पत्ति से अनजान या ही पछताते पछताते कगाल ही चले जाते हैं। इस आत्ममणि के अक्षय प्रकाश की खोज करना ही जीवन का उद्देश्य है। जो इसे ढूंढ लेता है, मालामाल हो जाता है और जिसे इसकी प्राप्ति नहीं होती वह गाँठ में रुपया होने से अनभिज्ञ के समान कगाल ही मर जाता है। यह मृत्यु उसकी अपमृत्यु है और इसी के परिणामस्वरूप वह बार-बार जन्मता है और मरता है। कवि 'बच्चन' ने भवसक्रमण के इस रहस्य को कविता की भाषा में लिखा है— दीप का निर्वाण फिर-फिर नेह का आह्वान फिर-फिर'। जब दीपक में स्नेह निश्शेष हो जाता है वह बुझ जाता है किन्तु दीपक की बाती पर से उडी हुई 'लौ' फिर किसी स्नेहगुणपूरित शराव के मुख पर अपना अस्तित्व व्यक्त करने के लिए मचलती रहती है और जसे ही कम की उदय शलाका जलने के लिए तैयार शराव (दीपक) के मुख पर छुआ दी जाती है वह पुनर्जन्म ग्रहणकर फिर से अन्धकार

निगलन और प्रकाश उगलने लगता है। 'शान्ति की शपथ' म कवि ने जसे इसी स्थिति से प्रेरित हाकर लिखा है—

'फूल वनत खाद, फिर से
खाद म गुल खिल रहे हैं
मृत्यु जीवन और जीवन
मृत्यु मे घुल मिल रह हैं
नाश को निर्माण का निर्बाध
रूपक छा रहा है
प्रलयसरिता क तटा पर
सृजन का श्रम चल रहा है।'

दीपको के जीवन और मरण की यह गाथा रूपक होकर प्राणिया के साथ लागू हो रही है। मिट्टी के शराव का बुझना और जलना निरतर चालू है। प्रकाश की खाज मे कदम बढाते हुए मानव ने अपनी अत सज्ञा को ही 'लो' के रूप मे बाहर प्रतिष्ठित किया है। दीपावली के दिन पक्तिबद्ध दीपकमाला हमे सकेत करती है निरन्तर प्रकाशमय हाने के लिए तेज दीप्ति, कान्ति और उज्ज्वलता का अपनाने के लिए। क्षण-क्षण जलना हुआ, न्यून होना हुआ स्नेह पुकार पुकार कर कहता है, मुझे जलती हुई यह 'लो पिय जा रही है। काल अतर के तत्वा को समाप्त करन मे लगा हुआ है। जीवनघर बादल के अन्त करण में बिजली के तार बिछे हुए हैं। जब तक आयु का सत्र चालू है इस 'नान क पाठयक्रम को पूरा कर सपूर्ण सिद्धिया का दोहन करना अभीष्ट है क्योकि नानन पुस सकलार्थसिद्धि'। ज्ञान से मनुष्य को सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि होती है। यह नान प्रकाश का ही नामान्तर है। जब आयु का 'योग' समाप्त हो जाएगा शाला से

छुट्टी मिल जाएगी। फिर सत्र को चालू रखना सम्भव नहीं। 'नहि अत्यायुप सत्रमस्ति'। इसलिए स्नेहपूर्ण दीपक की बाती पर लगी हुई 'लौ' सम्पूर्ण तल को जलाकर शराव में उतर कर बत्ती को खाने के लिए घोराग्नि का रूप धारण करे इससे पूर्व ज्ञान का दीप्तिमान आलोकसूत्र प्राप्त कर लो। फिर इस शराव के जलने बुझने का अथवा टूटने का कोई भय नहीं। ऐसे कृताथ-दीपक की उपमा महावीर भगवान् को प्राप्त है, जिनके निर्वाण पर भी आनन्द मनाया जाता है और जैसे एक दीपक ने निर्वाण होते होते कोटि कोटि दीपों का मुख आभा से छुआकर ज्योति मैय कर दिया है, ऐसे दीपावली की यह रात्रि झिलमिल २ जगर मगर द्युति बिखेर रही है।

देखो, कितने शलभ इस ज्योति को पान के लिए आ रहे हैं? प्रकाश की कितनी तीव्र पिपासा पतंगों के मन में है? छोटे छोटे जीवों का प्रकाश से यह प्यार क्या शिक्षा ग्रहण करने की वस्तु नहीं? मक्खी कितना घिनौना जीव है किन्तु उसे भी अन्धकार प्रिय नहीं लगता। यदि किसी कक्ष (कमरे) में मक्खियाँ भिन भिना रही हैं तो उसे बन्द कर देखिए, सभी मक्खियाँ मोड़े की थाली छोड़कर बाहर निकलने का मार्ग ढूंढने लगेंगी। अन्धेरा अकिंचन मक्खी को भी अच्छा नहीं लगता। किन्तु आश्चर्य है कि मनुष्य अनेक जन्मों तक अन्धकार में ही भटकता रहता है और आत्मा के सहस्रातिसहस्र 'वाट' के 'बल्ब' की रोशनी को देख नहीं पाता। मानो, दीपावली के दीपकों की कतार इसी हमारे अज्ञान पर हँस रही है। उनकी जलती देहों से हँसी के स्रोत बह रहे हैं। अरे! वे कहते हैं 'तुम हम जलाते हो किन्तु आयु-कर्म के बन्धन में तुम भी तो ठीक हमारी ही तरह जल रहे हो। चेतो जागो, सवेरा होने से पहले सावधान होकर अन्धकार को मिटाने का

प्रयत्न करो। यदि अंधकार मिटाने से पूर्व गवरा हो गया आयुक्रम पूरा हो गया, तो काल-समीरण फूंक मारकर बुझा देगा। यह लो जीवन की दीप्ति के रूप में जलता रहे तभी तक ठीक है, 'चिता की ज्वाला' बने इससे पहले आत्मा के आलोक को पहचान लो। दीवाली की रात पटाखों की आवाज में डूब रहा है, जूए की कौड़ियां से खनखना रही है। इसे यों ही मत जाने दो। जीवन की ज्योति को कौड़ियों के मूल्य क्या रहे हो? बारूद की ढेरी पर बैठकर स्वयं आग लगा रहे हो? बस ही, जैसे कोई मणियों का गुंजा के विनिमय में बेच दे। जीवन अजस्र जलने का नाम है, प्रकाश का पर्याय है। ज्योति की उपासना का समय है। इस भवाटवी में कितनी अमावस्या की गुफाएँ हैं, कितने विषम मार्गों से चलकर उद्देश्य के कूल को छूना है कितनी अजस्र चेतना इसमें आवश्यक है? क्या उसके स्वरों को पटाखों की आवाज में डुबा देना चाहते हो? क्या उसके सम्बल यात्रापथ से थककर, जूआ खेलकर उस दूरी को जीत सकना सम्भव समझते हो? ऐसा कभी हुआ है? साहसिक यात्रियों ने एक एक अगम कदम से सिद्धियों की समीपता अनुभव की है। उनकी लगन चेतना, शक्ति और विश्वास प्रतिक्षण ज्योति के दर्शन करते रहे हैं। उनका प्रत्येक क्षण दीपावली होकर मुस्कराता है। भटके हुए मनुष्यों को दीपों की पंक्तियाँ मुँडेरों से उतारकर आत्मा के अंतराल में रख लेनी चाहिए और निर्वाण को गये हुए भगवान् तीर्थंकर परमदेव के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए मोक्ष मार्ग पर दृढ़ता से कदम बढ़ाते चलना चाहिए। पटाखे और द्यूत तथा मद्यपान तो व्यसन हैं अंधकार है। प्रकाश के सामने भी यदि यह अंधकार खुलकर खेलता रहा तो इसका नाश कब होगा? तुम्हारे आत्मा में यदि इन लाखों दीपों से भी

प्रकाश नही पहुँचा तो अन्धेरा कभी मिटने वाला नही। ये ज्योति के सन्देशवाहक तुम्हारे घरो मे, गलियो मे रोशनी का सन्देश (समाचार) लेकर आये हैं। बारह महीनो मे एक बार आते हैं। जैसे मानसरोवर से राजहस पक्षी उत्तरप्रदेश की नदियो के विशाल पाट पर लौट हो। तुम यदि इन्हे मुक्ताफल नही दोगे, ये निराश लौट जायेंगे। आत्मा की अक्षय झोली मे अमर मुक्ताफल हैं उन्ह राजहसो को देकर मुक्त हो जाओ। यह ज्योति की उपासना, सगति जीवन का सर्वोत्कृष्ट परिणाम है, आचार्य समन्तभद्र कहते हैं—'चन्दन और चन्द्रमा की रश्मियाँ, गगा का जल और मोतियो की मालाएँ इतनी शीतल नही जितनी निर्मल मुनियो की वाणी रूप किरणें।' इसमे मुनिवाणी को ज्ञानसोपानपद्धति बताया है। ज्ञान (आलोक) की प्राप्ति से सिद्धियो की प्राप्ति होती है। जसे घर मे अन्धेरा होने से रखी हुई वस्तुएँ भी दिखाई नही देती, उसी प्रकार आत्मा मे ज्ञानदीप जलाये बिना स्व पर पदार्थ का ज्ञान नही हो पाता। लोहे को पारद का सिद्ध रसायन स्वर्ण बनाता है किन्तु पारद और लोहे के मध्य म थोडी सी कागज की बाधा हो तो सुवर्ण होना सन्दिग्ध है। वसे ही कषायो के पत्र लगे रहने पर आत्मा का सुवर्ण रूप म परिणत होना अशक्य है। अत दीपावली को मात्र दीपको की अवली तक सीमित न रखो, आत्मा की गहराई में उतर कर देखो एक दीपक वहाँ भी जलाओ, जिसकी शिखा निर्वाण तक जलती रहे।

'हरिवश पुराण' के ६६ वें सर्ग में भगवान् के इस निर्वाण महोत्सव का हृदयहारी वर्णन निम्न श्लोको मे किया गया है —

जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य सन्तत
समन्ततो भव्यसमूहसन्ततिम्।

प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीम्
मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥१८॥

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया
सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः
प्रदीपिताकाशतला विराजते ॥१९॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्
प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं
जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक् ॥२०॥

अर्थात् सवनता की प्राप्ति के पश्चात् भगवान् महावीर भव्य जनसमूह को सबन तत्वोपदेश देते हुए पावा नगरी को पधारे। वहाँ मनोहर नाम के उद्यानवन में विराजमान हुए और स्वाति नक्षत्र के उदित होने पर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में घातिय कर्मों का नाश कर निर्वाण प्राप्त किया। *उस निर्वाणमहोत्सव को व्यक्त करती हुई 'पावा' नगरी* दीपमालिकाओं से प्रकाशमान हो उठी। दीपों की पंक्तियाँ इस प्रकार शोभायमान थीं मानो आकाशतल ही उतरकर पृथ्वी पर आ गया हो। उसी समय से प्रतिवर्ष आदरपूर्वक भारत में दीपावली पर्व मनाया जाता है। इस दिन भगवान् जिनेश्वर की पूजा की जाती है।

महात्मा बुद्ध को आनन्द ने (शाक्या में विहार करते हुए) भगवान् महावीर के निर्वाण की सूचना दी थी। महात्मा बुद्ध ने इसे आनन्दप्रद समाचार माना था। 'पाली' में लिखित ये पंक्तियाँ हैं— एवं समयं भगवासक्केसु विहरति तेन खो पन

समयन निग्गठो नातपुत्तो पावाय अधुना कालगतो होति —आनन्द न कहा कि निगण्ठ नायपुत्र भगवान् महावीर का 'पावा' पुरी म निर्वाण हो गया है। भारत मे प्रचलित सवत् मे वीर सवत् प्राचीन है। यह कार्तिकी अमावस्या को समाप्त होता है और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है। वर्ष के आरम्भ की इस तिथि का 'वार प्रतिपदा' कहते हैं ऐसा उल्लेख 'वामन पुराण' मे है। 'जय धवला' ग्रथ के 'कषाय प्राभृत' म लिखा है—कत्तिय मास किण्ह पक्ख चौद्दस दिवस केवलणाणेण सह एत्थ गमिय परिणिव्वुओ वड्ढमाणो। अमावसीए परिणिव्वाण पूजा सयल दविहि कया।'—कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी को भगवान् वर्द्धमान निर्वाण गये और अमावस्या को समस्त देवो न 'निर्वाण-पूजा' की। 'निर्वाणपूजा' करते हुए श्रावकगण अत्यन्त पवित्रता और विनय भक्ति स भगवान् को 'मोदक' अर्पित करते हैं जिसे निर्वाण लड्डू कहते हैं। यह 'निर्वाणपूजा' भव्यजनो की आत्यन्तिक भक्ति की सूचक है। वस वीतराग तीर्थंकर परमदेव को मोदक, फल या नारियल भी अर्पित किया जा सकता है। बौद्धो म इस रात्रि को 'यक्षरात्रि' कहा गया है। मुस्लिम कवि 'अब्दुल रहमान' का 'सन्देश रासक' एक प्रसिद्ध रास काव्य है। इसकी रचना का समय ईसा की बारहवी शती है। अपभ्रश भाषा के इस काव्य म दीपावली का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

दितिय णिसि दीवालिय दीवय
णव ससिरेह सरिस करि लीअय।
मडिय भुवल तरुण जोइक्खिहि
महिलिय दिंति सलाइय अक्खिहि ॥१७६॥

दीपावली की रात्रि मे दीपक जगमग कर रहे हैं। दीपको की वलिकाएँ नवीन वाल चद्रमा की रेखा के समान दीप्त हो रही हैं। सारा भुवनतल ज्योति से भिलमिला रहा है और महिलाएँ ताजा पार हुए कज्जल को शलाका मे आँखो म आँज रही हैं।

मान्यखेट के राष्ट्रकूट सम्राट् कृष्ण तृतीय के शासनकाल (सन् ६५६ ई०) मे जनाचाय सामदेव सूरि ने 'यशस्तिलकचम्पू' लिखा, जो सस्कृत साहित्य की गद्यपद्यात्मक चम्पू रचनाओ म अपूव है। दीपोत्सव का वणन करते हुए उन्होने लिखा है कि दीपावली के समय मे लोग घरो की लिपाई पुताई म लग ई, उन पर श्वेत ध्वजाएँ उडा रहे हैं, आमोद प्रमोद म निमग्न है, गीत-वाद्यो क स्वर मुखरित हो रहे हैं। घरो की छतो पर, मुडेरों पर दीप पक्तियाँ प्रज्वलित कर वातावरण को ज्योतिमय कर रहे हैं। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त 'ज्ञानेश्वर' ने अपने ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी मे दीपावली का उल्लेख किया है। ज्ञानेश्वर का समय ईशा की तरहवी (१२६०) शताब्दी है। आईन-ए अकबरी म अबुल फजल (१५६०) ने लिखा है कि दीपावली वश्यो का सबसे बडा त्यौहार है। इस दिन रात्रि म दीपक जलाकर खूब रोशनी की जाती है।

इस प्रकार विविध जन और जनेतर ग्रथो म प्रसगान्त पाति दीपावली वणन विषयक कवित्व, ऐतिह्य गुथे पडे ह जो दीपोत्सव की परम्परा को प्राचीन सिद्ध करते हैं। प्रकाश का यह पव अ धकार का ही नही, हृदयगुहा म निविष्ट अज्ञान अध कार को भी जला सके, तभी इसकी साथकता है। निर्वाण पव का केवल भौतिक समृद्धि के उपायचिन्तन म ही व्यतीत करना दीपोत्सव' के अधिष्ठाता परमदेव की पवित्र स्मृति से दूर है।

कम धूलि दूर करने के स्थान पर अतिरिक्त कम कपायो के पर्व मे सनना प्रमत्त योग का आमत्रण करना है। दीपा की भिल मिल कान्ति म अपना पुर्ननिरीक्षण करते हुए जीवन म पवित्रता प्रसूत करनेवाले उत्तम क्षमादि धर्माङ्गो को अपनाना वान्छनीय है। नूतनता के गवाक्ष से झांकने वाले आधुनिक शिक्षादीक्षित नयी पीढी के युवा न केवल दीपात्सव अपितु सभी धार्मिक पर्वो त्सवा के प्रति आस्थाशील हो, इसके लिए उनके सरक्षका पर यह दायित्व भार है कि वे पव समयो की उज्ज्वल वास्तविकता स उन्हे परिचित करायें और द्यूतादि व्यसनो से परे रहते हुए पर्वों को मात्र क्रीडा कौतुक का रूप न दें। नही ता प्रौढ होते हुए उनके मस्तिष्क कुरीतियो मे जीवित रहने वाले पर्वों को सहतुक श्रद्धान देने मे अपने को विपन्न पाएँगे। आजकल लागो की जीवनचर्या मे एक त्वरा है, क्षिप्रकारिता है, हडबडी है। स्वास्थ्य शिक्षा के नियमो म यदि भोजन के एक एक कवल को ३२ बार चबाकर निगलना लिखा है ता आज का अधिकाश व्यक्ति बत्तीस चवणा मे तो पूरा भाजन ही समाप्तप्राय कर लेता है। उदा हरण का आशय यह है कि जीवन बलगाडिया से उतरकर अति स्वन विमानो मे उडने लगा है और एक दौड लगी हुई है। यही दौड देवस्थानो पर जानेवालो के मन मे भी घुमड रही है। प्राय लोग समयाभाव मे ही पहुँचते हैं और घृतपुष्कल दीपक लेकर लड्डुआ, फला, नारियला की बौछार करते हुए भगवान् के दर्शन कर लौट आते है। ऐसे लोग यदि विनय भक्ति का यथावत् सरक्षण न कर रहे हा, तो इसमे क्षिप्रगामी समय का दोष दना उचित है अथवा जाने अजाने कथचित् प्रमत्तयाग के शिकार हुए भव्यजना को ? लाक मे किसी मान्य या सम्भ्रान्त व्यक्ति के समीप जाते समय लौकिक जन कितनी सावधानी रखते है किन्तु

मन्दिरो मे जिन बिम्ब के समक्ष उपस्थित होने वाल भीड बना लेन हैं, धक्का मुक्की होती है, बहुत शोर मचाते हैं और भगवान् का निर्वाण लड्डू भी यथाविधि नही दे पाते हैं। जो विन्द-व द्य हैं, सम्राटा और देव देवन्द्रा के मुकुट मणिकलापा से जिनके नखाग्र रजित हैं, उनकी भावापस्थिति का भान करने वाल भव्यजन परमदव के समक्ष भी विनय रक्षा नही कर पात, यह शोभनीयता की किस कोटि म आते हैं यह तीथकर परमन्य के अचक ही निर्णय करें। भगवान् का दीपक अपण करना भाव नाओ के उज्ज्वल प्रतीका का समपण करना है किन्तु इन भाव-नाओ मे अशिष्टता की उग्र गध जब मिल जाती है तो वह विनय की शालीनता के साथ अभद्र हो उठती है। अतिमात्रा म पूरित घृत दीपशरावा म पडे रहत हैं बत्तियाँ बुझ चुकी होती हैं और पतगा के जले, अधजले शव उनमे तरत रहते हैं। किन्तु त्वराशील श्रावक तो इसे देखता नही, उसे अवकाश भी नही है। तथापि न देखन से अहिंसा धम के दवता क समक्ष हान वाली इस अहिंसा का प्रायश्चित्त नही लगगा क्या ? वह घृत आँगन मे फलकर कीच मचा देता है और दीप की (दीपदान की) वास्तविकता को छलता है। यह अनुशासनहीनता है अवि-नय है और 'होम करत हाथ जल' की लोकोक्ति का चरिताथ करन वाला पुण्यबन्ध क लिए उद्यत को कथचित् पुण्येतर बध का कारण भी हो सकता है। वीतराग भगवान् की पूजा दुरि तक्षय और पुण्योपचय के लिए उतनी नही है जितनी उभय-व्यतिरिक्त मोक्षलब्धि के लिए है। भगवान् के पूजक समवेत स्वर मे गाते हैं—

'ग्रहत्पुराणपुरुषोत्तम पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ।'

हे भगवान् ! मैं लौकिक प्रयोजनो का प्रार्थी नही हूँ । मैं तो आपके समक्ष केवलज्ञान रूप अग्नि में सम्पूर्ण पुण्यो को दग्ध करने उपस्थित हुआ हूँ क्योकि पुण्य और पाप दोनो मोक्ष के प्रतिबन्धक हैं । दीप जलाने वाले भी अपने अशेष पुण्यापुण्य कर्मों के दीपको को ज्ञान शलाका से जलाने भगवान् के समक्ष उपस्थित हुआ करें तो उनके उद्देश्य भाग कितने प्रशस्त न हो जाएँ?

दीपो का यह पर्व जो निर्वाणप्राप्त भगवान् की पूजा से महिमान्वित है, उन्ही के चिन्तन से तद्गुणलब्धिसौक्य उपस्थित करने वाला हो और सम्यक्त्व परिच्छिन्न ज्ञानदीप को आत्मा मे प्रज्वलित कर सके यही इस महोत्सव का उद्देश्य होना चाहिए।